

... चित्तोड से बुलावा (व्यावहारिक) अध्याय ...

अकस्मात् उसी समय मेवाड के संदेशवाहक के माध्यम से चित्तोड के दुर्ग पर मुगल आक्रमण का पैगाम मिलते ही यह मस्ती का मौसम मातम और गम में परिणित हो जाता है। इस समाचार से राजकुमारी कृष्णाजी के अन्तस् पटल पर भी उदासी का अंधकार अपना अधिकार जमा लेता है। लेकिन सारी वस्तु स्थिति को समझते हुए एक क्षत्रिय वीर बाला की भाँति वह स्वयं कल्हाजी से आह्वान करती है कि “हे मेरे मनमंदिर के देवता, मेडतभूप कल्याणसिंह राठोड - इस समय अपनी भारतीय संस्कृति के अनुसार, अपनी परम्परागत रीति-नीति के अनुसार मैं मानती हूँ कि अपनी धरती माता की रक्षा एक वीरपुरुष का प्रथम कर्तव्य है।

इसलिए आपकी मंशा के अनुरूप मैं स्वयं आपसे यह अनुरोध करती हूँ कि संकट की इस घड़ी में आप मेरी चिंता को छोड़कर तत्काल ही मातृभूमि की रक्षा के लिए प्रस्थान करें।” इतना कहकर कृष्णाजी ने अपने हाथों से कल्हाजी के उज्जवल ललाट पर तिलक लगाकर विजयवर्ण की कामना के साथ रणक्षेत्र के लिए विदाई दी।

... आखिरी वचन (बाबरहवाँ अध्याय) ...

कृष्णाजी की इस बुलन्द होसला आफजाई से उत्साहित कल्हाजी अपनी भ्रातापिनी को एक प्रेरणा दायिनी शक्ति स्वरूपा देवी के रूप में स्वीकार करते हुए मनन करते हैं कि “मैं अपनी माटी की रक्षा के लिए आज युद्धस्थल पर जरूर जा रहा हूँ। लेकिन तुम्हारे इस त्याग एवं समर्पण के सम्मान में तुमसे मिलन की खातिर मैं किसी भी सूत्र में वापस लौटकर जरूर आऊंगा।” और अब कल्हाजी ने घोड़े की लगाम चित्तोडगढ़ की दिशा में मोड़ दी है।

दुधर राजकुमारी कृष्णाजी सजल नेत्रों से बोझिल हृदय लेकर कल्हाजी के ओझल होते जा रहे आखिरी दृश्य को भी बारम्बार निहारती जा रही है। मन के भीतर विकराल हाहाकार है और डबडबाई हुई आँखों से हीना (मेहंदी) लगे ओझल कर प्रियतम की छवि को प्रणाम करने के लिए उठ रहे हैं। शीघ्र भी उनके सम्मान में नत हो रहा है तथा प्रियतम की इस विकट जुदाई के कारण आँखों में आँसुओं की बाढ आ गई है।